© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

संस्कृत वाङ्मय में नैतिकता की परम्परा

उर्मिला देवी
शोधच्छात्रा
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

'नीति' से ठक् प्रत्यय करने पर 'नैतिक' शब्द निर्मित होता है। 'नित्या ज्ञायते इति नैतिक' जो 'नीति' को जानता है वही 'नैतिक' है। नीति का आदर्श स्वरूप नैतिक विचार है, जिसका उद्देश्य मानवीय चरित का निर्माण करना है। नैतिक विचार 'कर्तव्यों की आन्तरिक भावना एवं नियमों का वह समूह है, जिसमें उचित–अनुचित का विचार सन्निहित है। नैतिक विचार सामाजिक नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण साधन है। नैतिक विचार, सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, न्याय, समानता और प्रेम के गुण सिखाती है तथा असत्य , अनाचार इत्यादि दुर्गुणों से बचाती है। नैतिक विचारों में कुछ नियम है, इस नियम को ही समाज का आदर्श माना गया है। धर्म का प्रभाव शिथिल हो जाने पर सामाजिक नियन्त्रण में नैतिक विचार महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संस्कृत वाङ्मय में नैतिक विचारों की एक लम्बी परम्परा है। जो वैदिक वाङ्मय से लेकर लौकिक संस्कृत में विस्तृत रूप से वर्णित है–

वेदों में नैतिक विचार– नैतिक विचार वेदों में ऋत एवं सत्य के रूप में दृष्टिगत होता है, क्योंकि ऋत और सत्य ही आदर्शों का मूल आधार है। ऋत का तात्पर्य– सुव्यवस्थित नियमन अथवा व्यवस्था करना। ऋत को सत्य का उद्भूत कर्ता माना गया है। ऋत और सत्य एक दूसरे से अन्योन्याश्रित है। ऋत से ही विश्व का नियमन, संचालन, यज्ञ विधि विधान, नैतिक आचरण की विधि और पालन सम्यकतया गतिमान और सुव्यवस्थित होते हैं। मानव जीवन को प्रेरित करने वाले जो भी नैतिक आदर्श स्वीकृत है, उनका आधार ऋत एवं सत्य है। ऋत के अनुकूल एवं प्रतिकूल मानव आचरण को विभक्त करने का प्रयास भी **ऋग्वेद** में दृष्टिगत होती है। **ऋग्वेद** में प्रकाश, ज्ञान, दया, दान, आदि नैतिक गुणों के अधिष्ठान है। **ऋग्वेद** में कुछ देवों का अधिष्ठान नैतिक देव के रूप में स्वीकृत किया गया है।[1] उनमें से वरूण प्रमुख नैतिक व्यवस्था के स्वामी हैं। वे ऋत के अवलम्बन और उसके उद्गम है।[2] वरूण के धर्म, धामन् और व्रत से सम्पूर्ण नैतिक जीवन आच्छादित है। वरूण की इच्छाओं का अतिक्रमण करना पाप तथा अपराध की कोटि में अधिष्ठित करना है।[3]

नैतिक देव के रूप में मित्र का भी परिगणन किया गया है। मित्र विविध रूपों में मानवीय कृत्यों का निरीक्षण करते है। वे व्यक्ति के बहुविध व्यवहार में सत्यभाषण, सौहार्द, ईमानदारी का निरीक्षण करते है।[4] मित्र सत्य और मानव सम्बन्धों का रक्षक है। मित्र और वरूण के समान अग्नि भी नैतिक आचरण के देवता है। अग्नि के

---

[1] एम. ए. मैकडानल पूर्वोद्घृत पृष्ठ 26
[2] **ऋग्वेद** 1.105.6
[3] राजबलि पाण्डेय, भारतीय नीति का विकास पृष्ठ 22
[4] **ऋग्वेद** 7.36.21

अनेक नेत्र है, जिससे सम्पूर्ण विश्व पर दृष्टिपात करते रहते है। उनके द्वारा सभी कर्म व्याप्त है, वे मनुष्य के कर्मों को देखते रहते है।[5]

यजुर्वेद में नैतिक विचारों का स्वरूप दृष्टिगत होता है। इसमें व्रत, नियम आदि को सत्य की उपलब्धि का साधन बताया गया है। यजुर्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि व्रत से मनुष्य को दीक्षा की प्राप्ति होती है, दीक्षा से दक्षिणा, दक्षिणा से अपने जीवन के आदर्शों में श्रद्धा, एवं श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है–

व्रतेन दीक्षा माप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।।[6]

अथर्ववेद के विभिन्न सूक्तों में गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित अनेक नैतिक विचार वर्णित है। उदाहरणार्थ एक मन्त्र में ऋषि का कथन है कि पुत्र को माता–पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिए, पत्नी को अपने पति के प्रति मधुर एवं स्नेहपूर्ण वाणी का व्यवहार करना चाहिए। परिवार के प्रत्येक सदस्यों को एक मत होकर, समान आदर्शों का अनुसरण करते हुए परस्पर स्नेह एवं प्रेम का प्रसार करना चाहिए–

अनुव्रतः पितृपुत्रों मात्रा भवतु समनाः।
जाया पत्ये मधुमती वायं वदतु शान्तिवाम्।।[7]

तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि– सत्य के द्वारा मानव स्वर्ग को प्राप्त कर सुख का भोग करता है– **'ऋतेनैव स्वर्ग लोक गमयति'**[8]

शास्त्रीय ग्रन्थों नैतिक विचार– शास्त्रीय ग्रन्थों की परम्परा में नैतिक विचारों का सम्यक विवरण प्राप्त होता है। नैतिक विचारों का वर्णन करते हुए मनु का कथन है कि– "श्रद्धापूर्वक नीच से भी अच्छी विद्या को, चाण्डाल से परम धर्म को और नीच कुल से भी स्त्री रत्न को ग्रहण करना चाहिए"

श्रद्धधानः शुभां विद्या माद दीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मे स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।।[9]

मनु आगे कहते है कि – विष से अमृत को, बालक से सुन्दर वचन को, बैरी से सुन्दर आचरण तथा अशुद्ध स्थानों से सुवर्ण को ग्रहण करना चाहिए।[10] **बृहस्पति ने** अपने स्मृति ग्रन्थ में वित्तीय नीति के निर्धारण में नैतिक विचारों को विशेष महत्व दिया है, उनका कथन है कि जो राजा अधिक धन इकट्ठा करने के विचार से अधिकाधिक 'कर' लेता है, उसके राष्ट्र का नाश हो जाता है, उसकी वृद्धि नहीं होती है–

---

[5] **ऋग्वेद** 4.4.3
[6] **यजुर्वेद** 19.30
[7] **अथर्ववेद** 3.30.1–2
[8] **तैत्तिरीयोपनिषद उपदेश बल्ली**
[9] **मनुस्मृति** 2.238
[10] **मनुस्मृति** 2.239,240

संवर्धयते तथा कोश माप्तै स्तज्ज्ञैराधिष्ठितम्।
काले चास्य व्ययं कुर्यात् त्रिवर्ग प्रतिपत्तये।।[11]

शुक्रनीति में आचार्य शुक्र ने पुरूषार्थों पर ही समस्त क्रियाओं को आधारित माना है। धर्म, अर्थ तथा काम इन तीनों का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित कर, उन्होंने नियमानुकूल कार्य करने पर बल दिया है। धर्म से ही सुख की प्राप्ति एवं धन से ही धर्म के पालन का सिद्धान्त को स्वीकार करते है–

सुखं चनविना धर्मात्तस्माद्धर्म परोभवेत्।
त्रिवर्ग शून्यं नारम्भं भजेन्तं च विरोधयनः।।[12]

विदुरनीति में नैतिक विचारों को प्रस्तुत करते हुए विदुर जी ने कहा है कि– मनुष्य जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसे लोगों की सेवा करता है और जैसा होना चाहता है वह वैसा ही हो जाता है।[13] एक अन्य स्थल पर वे कहते है कि जलती हुयी आग से सोने की पहचान, सदाचार से सत्पुरूष की, व्यवहार से साधु की, भय आने पर शूर की, आर्थिक कठिनाइयों में धीर की और कठिन आपत्ति में शत्रु व मित्र की परीक्षा होती है–

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधु।
शूरो भयेष्वर्थ कृच्छ्रेषु धीरः कृच्छ्रेश्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च।।[14]

चाणक्य नीति में कौटिल्य ने त्रिवर्ग के आधार पर मानव जीवन को विभक्त किया है। उन्होंने इन तीनों में अर्थ को प्रधान बताया है, क्योंकि सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था एवं व्यक्ति के कर्तव्य तथा राज्य व्यवस्था सभी अर्थ पर ही निर्भर है– '**अर्थ एव प्रधानः अर्थमूलौ हि धर्म कामाविति**'।[15]

पौराणिक ग्रन्थों में नैतिक विचार– पुराणों में नीति के प्रसंग में कालिका उप पुराण के 85वें अध्याय का नाम विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस अध्याय में राजा एवं नीति में निपुण और्व का संवाद प्रमुख है। सगर का प्रश्न मृतात्मा तथा मार्या के साथ सदाचार मूलक व्यवहारिक नीति से है। प्रत्युत्तर में और्व ने आध्यात्मिक व्यवस्था तथा लोक नीति के द्वारा सदाचार को सुसंगत बताया है। '**यथा नीत्या प्रयोक्तव्याः सुत आत्मा प्रिया तथा तेषां विशेषैः सहित सदाचारं वदस्तमे**'।[16]

पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में पति–पत्नी की पारस्परिक अनुकूलता से ही जीवन की सार्थकता बतायी गयी है। दम्पती की अनुकूलता से धर्म, अर्थ एवं काम त्रिवर्ग की वृद्धि होती है– '**अनुकूल्यं हि दम्पत्यो स्त्रिवर्गोदयहेतवे**'।[17]

---

[11] बृहस्पति स्मृति व्यवहारकाण्ड 1.15
[12] शुक्रनीति अध्याय 3.2
[13] विदुरनीति अध्याय 4.13
[14] विदुरनीति अध्याय 3.49
[15] चाणक्य नीति– अर्थशास्त्र अध्याय 1 अधिकरण 15.1–2
[16] कालिका पुराण 85.33–40
[17] पद्मपुराण उत्तरकाण्ड 223.36–37

महाभारत– नैतिक विचारों की दृष्टि से महाभारत एक अमूल्य ग्रन्थ है। शान्तिपर्व के 226वें अध्याय के 12वें श्लोक में यह कहा गया है कि– पिता के आज्ञा का पालन, उसके औचित्य–अनौचित्य का विचार किये बिना ही करना चाहिए, पिता के आज्ञा का पालन करने वाले पुत्र का समस्त पाप स्वतः तिरोभूत हो जाता है–

तस्मात् पितृ वचः कार्य न विचार्ये कदाचन्।
पातकान्यपि पूयन्ते पितुः शासनकारिणः।।[18]

महाभारत में एक अन्य स्थल पर यह भी कहा गया है कि– नीति कुशल व्यक्ति की दक्षता इसी में है कि वह शत्रु को मित्र के समान मधुर व्यवहार से सन्तुष्ट रखे तथा स्वयं उससे नित्य सर्प युक्त घर के समान भयभीत रहकर सावधान रहे–

शत्रुÉच मित्ररूपेण सान्त्वेनैवाभिसान्त्वयेत्।
स नित्यश्चोद्विजेत्तस्माद् गृहात्सर्प युतादिव।।[19]

गीता में कहा गया है कि मनुष्य को कर्म करना चाहिए किन्तु फल प्राप्ति की आकांक्षा नहीं होनी चाहिए, साथ यह भी ध्यान रहे कि कर्म में अकर्मण्यता की स्थिति न आये।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।
मा कर्म फलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्व कर्मणि।।[20]

गीता में स्वधर्म के पालन पर भी जोर दिया गया है। स्वधर्म को पूर्ण आस्था से करना ही हमारा परम कर्तव्य है। स्वधर्म में मरण को श्रेष्ठ तथा परधर्म को भयावह बताया गया है–

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावह।।[21]

साहित्यिक ग्रन्थों में नैतिक विचार–

महाकाव्य– महाकाव्यों में नैतिक विचारों की पूर्ण श्रृंखला प्राप्त होती है। कतिपय प्रमुख महाकाव्यों में वर्णित नैतिक विचारों की एक संक्षिप्त रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत है– माघकृत **शिशुपालवधम्** के प्रथम सर्ग में नारद जी के आगमन पर कृष्ण उनका सत्कार करते हुए कहते है कि– महात्मा पुरूषों का अतिथि के रूप में घर पर आना पुण्यों के फल स्वरूप ही है–

तमर्ध्य मर्ध्यादिकयादि पुरूषः सपर्यया साधु सपर्यपूजयत्।
गृहानुपेतुं प्रणया दभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः।।[22]

---

[18] महाभारत शान्तिपर्व 226.12
[19] महाभारत शान्तिपर्व 14.15
[20] गीता अध्याय 2.47
[21] गीता अध्याय 3.35
[22] शिशुपालवधम् प्रथम सर्ग 14 श्लोक

किराताऽर्जुनीयम् में भारवि ने दण्डनीति के विषय में यह कहा है कि जो राजा न क्रोध वश, न धन की इच्छा से बल्कि यह मेरा धर्म है इस तरह अपने पुत्र एवं शत्रु में भी समान दण्ड की व्यवस्था द्वारा व्यतिक्रम को रोकता है, वह राज्य में सुशासन स्थापित करता है–

वसूनि वाÉछन्न वशी न मन्युना, स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः।
गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा निहन्ति दण्डेन स धर्म विप्लवम्।।[23]

नैषधीयचरितम् में नैतिक विचारों को बताते हुए श्रीहर्ष का कथन है कि– विश्वस्त मनुष्य का अहित कर उसके साथ विश्वासघात नहीं करना चाहिए। धर्मज्ञ पुरूष पूर्णतया विश्वास युक्त शत्रुओं के वध को भी अत्यन्त निन्दनीय मानते है–

न केवलं प्राणिवधो वधो मम त्वदीक्षणा द्विश्वासितान्तरात्मनः।
विगहितं धर्म धर्मे निवर्हणं विशिष्य विश्वास जुषां द्विषामपि।।[24]

रघुवंशम् महाकाव्य में माता से सम्बन्धित नैतिक विचारों को बताते हुए कालिदास यह कहते है कि– 'माता' निःस्वार्थ भाव से अपने सुखों का परित्याग करके अपने सन्तान के जीवन का सृजन करती है। वे कहते है कि मानव अन्य ऋणों से यथा कÉचत् अनऋण हो सकता है, परन्तु उसका माता के ऋण से मुक्त होना कभी भी सम्भव नहीं है–

सर्वासु मातृष्ठ पिवत्स लत्वात्सनिर्विशेष प्रतिपत्तिरासीत्।
षड़ानता पीत पयोधरासु नेता च मूनामिव कृत्तिकासु।।

खण्डकाव्य– खण्डकाव्यों में नैतिक विचारों की प्रचुरता है कतिपय खण्डकाव्यों में वर्णित नैतिक विचार यहाँ द्रष्टव्य हैं– मेघदूत में कालिदास ने नीतिपरक विचारों का वर्णन करते हुए यह कहते हैं कि– एकान्ततः सुख तथा दुःख किसी को प्राप्त नहीं हो सकता। चक्र की नेमि की भाँति भाग्य दशा कभी उन्नति प्रदान करती है, तो कभी अवनति के गर्त में डुबों देती हैं–

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमि क्रमेण।।[25]

नीतिपरक विचारों के परिप्रेक्ष्य में भर्तृहरि ने नीतिशतक में कहा है कि – कुमंत्रणा से राजा का नाश होता है, आसक्ति से सन्यासी का, दुलार करने से पुत्र का और शास्त्र का अध्ययन न करने से ब्राह्मण का, कुपुत्र से वंश का, दुष्टों की संगति से शील का, मद्यपान से लज्जा का, विदेश में रहने से स्नेह का, परस्पर अनुराग न दिखाने से मित्रता का, अन्याय से समृद्धि का तथा अपव्ययी होने से धन का नाश हो जाता है–

दौर्मन्त्र्यान्नृपति र्विनश्यति यतिः संगात्सुतो लालना
द्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।
ह्रीर्मद्यादन वेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रया–
न्मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात्त्याग प्रमादाद्धनम्।।[26]

---

[23] किराताऽर्जुनीयम् प्रथम सर्ग श्लोक 13
[24] नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग श्लोक 131
[25] उत्तरमेघ, श्लोक 46

नाटक– संस्कृत नाटकों में नैतिक विचार यत्र–तत्र विकीर्ण अवस्था में प्राप्त होते है। कतिपय नाटकों में अन्तर्निहित नैतिक विचार यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत है– विशाखदत्त ने अपनी कृति मुद्राराक्षस में उपकारी मित्र के आपद्ग्रस्त होने पर उसकी रक्षा करना मित्र का परम कर्तव्य माना है–

त्यजत्यप्रिय वत्प्राणान्यथा तस्यायमापदि।
तथैवास्यापादि प्राणा नूनं तस्यापि न प्रिया।।[27]

मालविकाग्निमित्रम् में कालिदास यह कहते है कि प्राचीन होने से कोई श्रेष्ठ नहीं हो जाता और न नवीन होने से निम्न कोटि का। दूसरों के विचारों एवं विश्वास के आधार पर अपना मत निश्चित करना मूर्खता पूर्ण है। विद्वज्जन परीक्षा करके ही उत्तम वस्तु को ग्रहण करते है–

पुराणमित्येव न साधु सर्व न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्य तद् भज्यते मूढ़ः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः।।[28]

उत्तररामचरितम् में भवभूति ने नैतिक परक कथन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि– गुणवान् व्यक्ति चाहे शिशु हो या वृद्ध, धनी हो या निर्धन, उसके गुण ही पूजा के योग्य होते है, स्त्रीत्व, पुंस्त्व जटा कषाय, वस्त्र आदि चिह्न विशेष एवं आयु विशेष उसका सम्मान नहीं बढ़ाते।[29]

गद्यकाव्य– संस्कृत गद्यकाव्य में नैतिक विचारों का कतिपय वर्णन भी परिलक्षित होते है– बाणभट्ट ने कादम्बरी कथामुखम् में स्नानार्थ जाते हुए जाबालि पुत्र हारीत द्वारा अनाथ वैशम्पायन शुक का पालन पोषण करना परम कर्तव्य बताया है।[30] **शुकनासोपदेश में** बाणभट्ट कहते है कि शिष्य के लिए गुरू का शान्तिजनक उपदेश केश समूह को पकने के रूप में निर्मल करती हुयी, बृद्धावस्था की भाँति उसी को गुण रूप में परिणत कर देता है। अतएव संस्कृत वाङ्मय में नैतिक विचारों का वर्णन आद्योपान्त हुआ है। जिससे जीवन के प्रत्येक परिस्थितियों से समायोजन करते हुए व्यक्ति आज भी आगे बढ़ने में प्रयत्नरत है।

---

26 नीतिशतक अर्थपद्धति श्लोक 34
27 मुद्राराक्षस 1.25
28 मालविकाग्निमित्रम् 1.2
29 उत्तररामचरितम् 4.11
30 कादम्बरी कथामुखम् तरिणीश झा जावालि वर्णन पृष्ठ 383